Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2022 SHISRRJ | Volume 5 | Issue 1 | ISSN : 2581- 6306

वैदिक साहित्य में मूल्य विवेचन की अवधारणा की प्रांसगिकता (आज के संदर्भ में)

डॉ. रमेश चन्द्र टांक
शोधार्थी, सीनियर रिसर्च फेलो , ICSSR संस्थान

सारांश- वैदिक साहित्य संस्कृत साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखता है यह अत्यन्त प्राचीन है वैदिक ज्ञान को अनके ऋषियों ने संजोया है प्रत्येक वेद में समस्त वैदिक वाङ्मय में जीवन के नैतिक मूल्यों की व्याख्या की गई है। वेदों में **वसुधैवकुटुम्बकम्** की भावना का वर्णन किया गया है। वेदों में प्राचीन कालीन संस्कृति तथा धार्मिक, सामाजिक ऐतिहासिक, राजनैतिक एवं आर्थिक जीवन से सम्बन्धित मूल्यों का समावेश है यह सभी जीवन मुल्य मनुष्य के कल्याणकारी मार्ग को प्रशस्त करते है।

मुख्य शब्द- वैदिक, साहित्य, संस्कृत, धार्मिक, सामाजिक ऐतिहासिक, राजनैतिक, आर्थिक, मूल्य।

---

(1) वैदिक साहित्य में मूल्य-विवेचन-साहित्यिक ग्रन्थों में मूल्यों की व्याख्या तथा मूल्यों की अभिव्यक्ति प्राचीन काल के उपलब्ध ग्रन्थ वेद से लेकर आज तक उपलब्ध नवीन साहित्य में भी उपलब्ध है साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में विभिन्न देवताओं की स्तुतियों से सम्बन्धित मन्त्रों, में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक धारणाओं की अभिव्यक्ति हुई है यही धारणाएं जो सामाजिक जीवन से सम्बन्धित थीं वही मूल्यों की प्रारम्भिक अवस्था थी।

वैदिक साहित्य अत्यन्त प्राचीन है। वेद ज्ञान को अनेक ऋषियों ने संजोया है। प्रत्येक वेद में समस्त वैदिक वाङ्मय में यत्र-तत्र जीवन की सामान्य पद्धति से सम्बद्ध अनेक विचार गुम्फित हैं। ये ही जीवन के मूल्य हैं। वेदों में जहाँ आध्यात्मिक ज्ञान छिपा है वहीं ज्ञान के पुंज ये वेद जीवन के नैतिक मूल्यों का प्रतिपादन कर जीवन को सुन्दर बना सुख पूर्वक जीने की कला भी सिखाते हैं। जहाँ जीवन है वहाँ वेदों की उपयोगिता स्वत: सिद्ध है वैदिक मन्त्र सर्वत्र मनुष्य परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व कल्याण की भावना से ओत-प्रोत हैं। वेदों में अधिकांश प्रार्थनाएँ समूह रूप में की गई हैं तथा समूह के लिए ही कल्याण की कामना की गई है इसलिए सर्वत्र **"वसुधैव कुटुम्बकम्"** की भावना परिलक्षित होती है। कल्याण प्राप्ति के लिए ही वेदों की महत्ता बताते हुए मनुस्मृति में कहा गया है कि-

य: स्वाध्यायमधीतेऽबदं विधिना नियत: शुचि: ।
तस्य नित्यम् क्षरत्येष पयो दधि धृतं मधु।।[1]

अर्थात् जो मनुष्य एक वर्ष तक यथाविधि नियमपूर्वक वेद का स्वाध्याय करता है उसे वेद कामधेनु की भाँति दूध, दही, घी आदि देते हैं अर्थात् वेद उस व्यक्ति के नैतिक मूल्यों का पल्लवन कर उसकी भौतिक शारीरिक मानसिक और आत्मिक उन्नति के मार्ग को प्रशस्त करते हैं।

वरुण देव को वेदों में नैतिक देवता के रूप में स्वीकार किया गया है वरुण देव व्यक्ति के सत्य और असत्य दोनों को जानने वाले हैं- **यासां राजा वरुणो याति यन्नमध्ये सत्यानृते-अवपश्यन्जनानाम्।'**[2]

वेदों में प्राचीन कालीन संस्कृति तथा धार्मिक सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक एवं आर्थिक जीवन से सम्बन्धित मूल्यों का समावेश है। वेदों में जीवन मूल्यों को ढूँढना और उनको किसी भी प्रकार की कसौटी पर कसना हमारा बोद्धिक व्यायाम मात्र है। क्योंकि वेदों के सभी मन्त्र जीवन मूल्यों का ही प्रतिपादन करते हैं। जहाँ तक उनकी उपयोगिता की बात है तो कहा जा सकता है कि जीवन मूल्य एक रोगी के औषधी सेवन की तरह हैं, यदि रोगी औषधी का सेवन करेगा तो लाभ होगा और यदि

वह केवल औषधियों का संकलन करेगा, उसका नाम पढ़ता रहेगा, गुणधर्म की आलोचना और विश्लेषण मात्र करता रहेगा तो इससे औषधियों का कोई दोष या अनुपयोगिता सिद्ध नहीं होगी, बल्कि रोगी की मूर्खता मात्र प्रकट ही होगी। फिर आज मनुष्य जिनकों जीवन मूल्य समझता है वे स्थूल विचार भी वेदों में कम नहीं है। चारों वेद मानवीय मूल्यों के निर्णायक ग्रन्थ हैं। चारो वेद योग के यम नियमों, धर्म के दसों लक्षणोंऔर चारों पुरुषार्थों के जीवन्त उदाहरण हैं। अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह[3] तथा शौच सन्तोष तप स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधान'[4] ये यम, नियम, धैर्य, क्षमा–दमन अस्तेय शौच इन्द्रिय निग्रह बुद्धि विधा सत्य, अक्रोध–धर्म के ये दस लक्षण हैं।'[5] चारों पुरुषार्थ भी मानवीय मूल्यों के अन्तर्गत हैं। ऋग्वेद के एक मन्त्र में इनको सप्तमर्यादा . के रूप में गणना करते हुए लिखा है कि हिंसा, चोरी, व्यभिचार, मद्यपान, जुआ असत्यभाषण और इन पापों को करने वाले दुष्टों के सहयोग का नाम सप्त मर्यादा है इनमें से जो एक भी मर्यादा का उल्लंघन करता है वह पापी है।[6]

सामाजिक मूल्य-परस्पर व्यवहार से संयोजित व्यक्तियों का समुदाय समाज कहलाता है। समाज को कैसे उन्नत बनाया जा सकता है इस सम्बन्ध में अनेक निर्देश एवं मूल्य वेदों में उपलब्ध होते हैं जैसे–

पारिवारिक समरसता के मूल्य- व्यक्ति का समाज से सम्बन्ध उसके परिवार से होकर जाता है। अत: परिवार समाज का महत्त्वपूर्ण अंग है। पारिवारिक सम्बन्धों में मिठास व मधुरता लाने के लिए वेदों में विभिन्न प्रकार के मूल्यों को गुम्फित किया गया है जो आज के टूटते एवं बिखरते परिवारों के लिए जोड़ने वाले एक सेतु का काम कर सकते हैं– परिवार के सभी सदस्यों को मिलकर चलने तथा परस्पर मीठी वाणी बोलने का निर्देश देते हुए वेद में कहा गया है–

अनुव्रत: पितु: पुत्रो मात्रा भवतु समना:,

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवान्।।'[7]

अर्थात् पुत्र पिता के अनुकूल कर्म करे और माता के साथ मन के शुभ भाव से व्यवहार करे। पत्नी पति के साथ सदा मधुर भाषण करती रहे।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।

सम्यंच: सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।[8]

अर्थात् – भाई–भाई से द्वेष न करे, बहिन–बहिन के साथ न लड़े। एक मत से एक कर्म करने वाले होकर परस्पर निष्कपटता से भाषण करो।

सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रवां भव

ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी भव अधि देवृषु।।[9]

माता–पिता को चाहिए कि वे अपनी पुत्रवधू को इतना स्नेह एवं सम्मान दे कि वह ससुराल में ससुर, सास ननद देवर सब के दिलों पर राज्य करे. ससुराल में महारानी की शोभा को प्राप्त करे।

सामाजिक समरसता के मूल्य-समाज में परस्पर सहभाव को अनिवार्य समझते हए वेद ने सहभाव और समानता के मूल्य को इस प्रकार अभिव्यक्त करते हुए कहा है कि– सब मिलकर चले, सबकी विचारधारा एक जैसी हो, सबके मन आपस में मिलते हों, मन में किसी के प्रति द्वेष न रखें।'[10]

समानी व आकूति: समाना हृदयानि व:।

समानमस्तु वो मनो यथा व: सुसहासति।।[11]

अर्थात् हे मनुष्यों ! तुम्हारा सब पुरुषार्थ जीवों के सुख के लिए सदा हो, तुम्हारे विचार तुम्हारे हृदय तथा तुम्हारे मन सदा प्रेम सहित तथा विरोध से रहित हों।

सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।

अन्योऽन्यभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।।'[12]

अर्थात् प्रेमपूर्ण हृदय के भाव, मन के शुभ विचार और आपस की निवैरता आप अपने घर में स्थिर कीजिए, हर एक मनुष्य एक दूसरे मनुष्य के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करे।

संसाधनों का समान बँटवारा-समानता के मूल्य की अभिव्यक्ति करते हुए वेद कहता है कि समाज में कोई दूसरों के अधिकारों का हनन न करे! वेद में निर्देश है कि प्राकृतिक संसाधनों पर किसी का विशेष आधिपत्य नहीं, अपितु उनका समान बँटवारा होना चाहिए –

समानी प्रपा सह वो अन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।

सम्यंचोऽग्निं सपर्यतारानाभिवाभितः।[13]

अर्थात् पानी तथा अन्न के भण्डारों को सब बराबर बाँटकर मिलकर उपयोग करें। इसी प्रकार अनेकता में एकता के मूल्य की अभिव्यक्ति इस प्रकार की गई है

गोमायुरेको अजमायुरेकः प्रश्निरेको हरित एक एषाम्।

समानं नाम बिभ्रतो विरूपा पुरुत्रा वाचं पिपिशुर्वदन्तः।।[14]

अर्थात् किसी भी समाज में विभिन्न जातियाँ, कबीले भाषायें आदि हो सकते हैं। वेद में कहा गया है कि ऐसी अनेकता विवाद के बीज न बोये। इस अनेकता में भी एकता देखनी चाहिए, जैसे कि एक जलाशय में मेंढ़क होते हैं, उनके बोल भी अलग-अलग होते हैं, परन्तु रंग तथा बोल अलग-अलग होने पर भी वे एक ही जलाशय के मेढक होते हैं। रंग तथा बोल में अन्तर के आधार पर उनमें कोई भेद नहीं हो सकता।

जिस प्रकार गाय समान भाव से सबको हजारों धाराओं में दूध देती है, उसीप्रकार समाज में पृथक्-पृथक् भाषाएँ तथा पृथक-पृथक् आराध्य होने पर भी एकता का ही संचार होना चाहिए-

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं, नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम

सहस्र धारा द्रविणस्य में दुहां, ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती।।'[15]

वेद अपनी दृष्टि को और अधिक व्यापक बनाते हुए कहता है कि सब दिशाओं में मनुष्य की जो विभिन्न जातियाँ हैं, उनका समान विकास होना चाहिए, जैसे वर्षा होने पर सब नदियाँ एक समान जल से भर जाती हैं

इमा याः पंच प्रदिशो मानवीः पंचकृष्टयः

वृष्टे शापं नदीरिवेह स्फातिं समावहान्।।[16]

सामाजिक भाईचारा- वेदों में सामाजिक भाई चारे के मूल्य की अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है कि समाज में ऊँच-नीच, छोटे-बड़े की भावना नहीं होनी चाहिए। सब भ्रातृभाव से रहें। विकास के अवसर सबको समान रूप से प्राप्त हों-

ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसा वि वावृधुः ।

सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवोमर्या आ नो अच्छा जिगातन।।[17]

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।[18]

राजनीतिक मूल्य- लोक कल्याण की इच्छा से ऋषियों ने दीक्षा लेकर तप किया उससे राष्ट्र की उत्पत्ति हुई अतः इस राष्ट्र की भक्ति करें, ऐसा उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है।

भ्रदमिच्छन्तं ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।

ततो राष्ट्र बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसं नमन्तु ॥'[19]

मनुस्मृति के अनुसार क्षत्रिय राजा ब्राह्मणसंस्कारों को यथाविधि प्राप्त कर इस सारे राज्य की रक्षा न्याय पूर्वक करें।'[20]

अहिंसा- मानव जीवन के साथ ही श्रेय और प्रेय प्राप्ति के लिए संघर्ष आरम्भ से ही चला आ रहा है। इस जीवन संघर्ष में विविध क्लेश मनुष्य को काम क्रोध लोभ मोह आदि अनेक रूपों में आक्रान्त करते है। इनके वशीभूत होकर जब मनुष्य अन्य प्राणियों को कष्ट देने के लिए सन्नद्ध हो जाता है तो उस वृत्ति का नाम हिंसा है। वेदों में स्थान-स्थान पर हिंसक के प्रति घृणा के भाव लक्षित होते हैं, वेदों में कहा गया है कि जो व्यक्ति बुरे विचार से हिंसा के लिए अस्त्र चमकाता है, उससे और पाप से हमारी रक्षा करें।'[21] अहिंसा का अनुमोदन करते हुए कहा गया है कि अहिंसा से युक्त व्यक्ति वृद्धि को प्राप्त होता है।[22]

अस्तेय- अस्तेय का अर्थ है स्वामी की आज्ञा के बिना अनधिकृत पदार्थ को ग्रहण कर लेना तथा मन वचन कर्म से इस प्रवृत्ति का त्याग करना अस्तेय है। वेदों में अस्तेय नामक मानवीय मूल्य बहुशः प्रतिष्ठितः हैं। वहाँ अपने कुल की उन्नति के विचार से चौर्य कर्म को त्यागने तथा परिश्रम करने का संकल्प विद्यमान है।[23]

ईश्वर- नैतिक मूल्यों की अवधारणा के सन्दर्भ में यह समझने की बात है कि हमारा बहुत कुछ पाप, पुण्य, धर्म, अधर्म, कर्म, अकर्म, कर्मफल, सबुद्धि आदि की धारणायें ईश्वर से सम्बद्ध हैं। ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करना, उस पर श्रद्धा रखना, उसके प्रति समर्पण की भावना आदि कुछ ऐसे मूल्य हैं जो विश्व के सभी समाजों में आदिकाल से अधावधि पाये जाते हैं। इससे हमारे चिन्तन, कर्म औरसंस्कार प्रभावित होते हैं। इसलिए ईश्वर को उपेक्षित कर जीवन मूल्य निर्धारित नहीं किये जा सकते। रूद्र रूप परमात्मा की प्रार्थना व उपासना से प्राणियों को श्रेष्ठवास, जीवन में श्रेष्ठता तथा स्थिरता की प्राप्ति होती है! ईश्वर के प्रति समर्पित लोगों के हृदय में ईश्वर श्रेष्ठकर्मों को स्थापित करता है। जो व्यक्ति ईश्वरीय व्यवस्था में रहकर धरती का पालन या संरक्षण करता है वह ईश्वर का कल्याणकारी बन्धु है। दुष्ट व्यक्ति ऐसे श्रेष्ठ पुरुषों को दबा नहीं सकते। ईश्वर भक्त श्रेष्ठजन दुष्टों को बाज की तरह झपटकर नष्ट कर देते हैं।'[24]

हम परमात्मा के व्रत सें कभी विचलित न होंवे हम उसकी स्तुति करते हुए सुखी रहें। ईश्वर के प्रति जागरूक होकर स्तुति करने वाले बुद्धिमान लोग ही संसार में सही तरीके से प्रकाशित होते हैं तथा अपने को प्रकाशित करते हुए अन्य व्यक्तियों के जीवन में प्रकाश का संचार करते हैं।[25] हम ईश्वर की व्यवस्था और उसके वैशिष्ट्य को देखें और उसके अनुशासन में रहे और उसका सायुज्य प्राप्त करें।[26] इसलिए सर्वत्र उसी को व्याप्त जानकर तथा सब कुछ उसी का दिया हुआ है, ऐसा मानकर संसार में भोग करें, इसमें सामाजिक शान्ति और व्यक्तिगत मुक्ति निहित है, जो व्यक्ति उस परमात्मा की व्यवस्था में नहीं रहता उसकी आवाज को नहीं सुनता, वह अन्ततः गहन अन्धकार में डूब जाता है।[27]

पुरुषार्थ- पुरुषार्थ रूपी जीवन मूल्य के बारे में ऋग्वेद में कहा गया है कि

अयन अर्थानि कृण्वन् अपांसि।'[28]

अर्थात् कर्म करने वाले को अभीष्ट की प्राप्ति होती है।

उत्तिष्ठत प्र तरता सखायं[29]

अर्थात् हे मित्रो ! पुरुषार्थ करो और संसार रूपी नदी को पार करो।

न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः।'[30]

अर्थात् देवता अथक परिश्रमी से ही मित्रता करते हैं।

यन् अहवानपवृम्ते चरित्रैः।[31]

अर्थात् – पैर से चलने पर ही मार्ग तय होता है।

भूरी ज्योतिषि सुम्वतः।[32]

अर्थात् कर्मठ को बहुत ज्ञान का प्रकाश मिलता है।

ब्रह्मचर्य- सामवेद में ब्रह्मचर्य के लाभ को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि ब्रह्मचर्य सेवन से चेहरे पर ओज कान्ति तथा ब्रह्मतेज होता है।[33] ब्रह्मचर्य के पालन से मृत्यु पर भी विजय पायी जा सकती है'[34] योगदर्शन में भी ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां **वीर्य लाभः** कहकर इसका समर्थन किया है।[35] अथर्ववेद के ग्यारहवें काण्ड का पांचवा सूक्त जिसमें छब्बीस मन्त्र है में पूर्णतः ब्रह्मचर्य के गुण, महत्त्व व लाभ इत्यादि का वर्णन किया गया है।

सौमनस्य- ऋग्वेद के 10वें मण्डल का अन्तिम सूक्त सौमनस्य सूक्त है। यहाँ पर सौमनस्य से तात्पर्य समानता तथा मानसिक और बौधिक एकता है। समभाव की प्रेरणा देने वाले इस सूक्त में सबकी गति, विचार और मन बुद्धि में सामंजस्य की प्रेरणा दी गयी है।'[36] सौमनस्य से भी समानता रखता हुआ अथर्ववेदीय संज्ञान सूक्त है। यह सूक्त सामान्य शिष्टाचार और जीवन के मूल सिद्धान्तों को निरूपित करता है। सभी लोगों के बीच समभाव तथा परस्पर सौहार्द्र उत्पन्न हो, यह भावना इसमें व्यक्त की गयी है। आज आधुनिक भौतिकवादी युग पर दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि मनुष्य झूठी आधुनिकता की दौड़ में अपने सच्चे जीवन मूल्यों को विस्मृत कर परम सत्य के सुख से वंचित हो चला है, ऐसी स्थिति में जब उसकी आकांक्षाओं का कोई अन्त नहीं तब वह न तो भौतिक सुखों से सन्तुष्ट है तथा आत्मिक व आध्यात्मिक सुख उसके पास है नहीं तब उसकी दशा इस प्रकार की है कि– दोनों जहाँ से गये हम, न माया मिली न राम ।

सन्तोष- केवल प्राण धारण योग्य उपलब्ध साधन से अधिक साधन के ग्रहण में इच्छा शून्यता सन्तोष है।[37] वेदों में इस मूल्य को अपनाने के लिए बार–बार कहा गया है। सन्तोष बुद्धि उत्पन्न करने के लिए त्याग पूर्वक भोग करो, किसी के धन की लालसा मत करो।'[38] अथर्ववेद में सदैव सन्तुष्ट रहने की कामना की गई है।[39]

दान- उपनिषद् काल की तरह वेद के युग में भी दानशीलता का मानवीय मूल्यों में विशेष स्थान था। वेद का ऋषि कहता है कि सैकड़ों हाथों से अर्जन करो और सहस्त्रों हाथों से दान करो।[40]

अतिथि-सत्कार- कठोपनिषद् में कहा गया है कि–

"आशा प्रतीक्षे संगतं सूनृता च इष्टापूर्ति पुत्रपशूश्च सर्वान्।

एतद् वृऽस्ते पुरुषास्याल्पमेधसो यस्यानश्नन्वसति ब्राह्मणो-गृहे ।।"[41]

अर्थात् जिसके घर में अतिथि ब्राह्मण भूखा रहता है, उस न्यून बुद्धि वाले मनुष्य की प्रतीक्षा और उससे मिलने वाले सुख, श्रेष्ठ वाणी, कामना, पूर्ति, पशु आदि वैभव सबको ही क्षुधातुर अतिथि नष्ट कर डालता है।

त्याग- भारतीय संस्कृति में परमात्मा की प्राप्ति के लिए त्याग एवं तपोमय जीवन का निर्देष दिया गया है।

"नकर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः ।।[42]

अर्थात् कर्म से नहीं प्रजा से नहीं, धन से नहीं अपितु त्याग से कोई अमृतत्व को प्राप्त होते है। वैदिक धर्म की आश्रम व्यवस्था का उद्देश्य भी त्याग करने की शिक्षा देना है। त्याग की भावना अन्तः करण से होनी चाहिए। बाह्य त्याग दिखावा और दम्भ का कारक है, अन्तः करण के त्याग से ही व्यष्टि एवं समष्टिगत कल्याण होता है।

आध्यात्मिक मूल्य- आध्यात्मिक मूल्यों के बारे में वैदिक साहित्य में इस प्रकार विवेचन हुआ है यथा– **इदं ज्योतिरमृतं मर्येषु ।**[43]

अर्थात् यह आत्मा मनुष्यों में अमर ज्योति के रूप में हैं।

इसी प्रकार – **इदं सर्व यदयमात्मा।**[44] अर्थात् – यह सब आत्मा ही है।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।[45]

अर्थात् जो सब प्राणियों को अपनी आत्मा में देखता है, ऐसा मुमक्षु पुरुष किसी से भी घृणा नहीं करता। इस प्रकार समस्त वैदिक साहित्य आध्यात्मिक मूल्यों से समृद्ध है, जो विश्व कल्याणार्थ उन्नत जीवन दर्शन देता है।

सत्य- यजुर्वेद में सुखी जीवन के लिए सत्य एवं ऋत को बहुत महत्त्व दिया गया है। जीवन को जीना एक संकल्प है, एक व्रत है। इसके लिए सर्वप्रथम व्यक्ति को जीवन में सत्यता को धारण करना नितान्त अपेक्षित है। सुदृढ़ नींव पर भी भवन दृढ़ता से स्थिर रह सकता है। जीवन रूपी भवन की नींव सत्य है, असत्य कमजोर नींव की तरह है। कभी भी धाराशायी हो सकता है। इसलिए वेद का सन्देश है कि हम असत्य से दूर होकर सत्य को अपनायें।'[46] हमारी इच्छाएँ भावनाएँ सत्य हों शाश्वत हों।'[47] ऋत या सत्य के रास्ते पर चलकर ही हम मानव धर्म को प्राप्त कर सकते हैं। यजुर्वेद में ऋषि ने प्रार्थना की है कि असत्य के प्रति हमारे मन में अश्रद्धा होनी चाहिए तथा सत्य के प्रति ही श्रद्धा होनी चाहिए।[48]

आज ऋत का स्थान अनृत ने, सत्य का असत्य ने, संयम का असंयम ने, धर्म का अधर्म ने, सन्तोष का असन्तोष ने कर्त्तव्य निष्ठा का कर्त्तव्यहीनता ने और शीलता का अश्लीलता ने ले लिया है। आज की भाँति वेदकालीन युग में मानव के पास कोठी, बंगले, गाड़ी दूरदर्शन आदि भोग ऐश्वर्य के साथन नहीं थे। वे तो अन्न, धन, गौओं, पशुओं कीर्ति प्रजा पुत्र, पुत्री, पौत्र–पौत्री आदि को ही ऐश्वर्य समझकर इनकी याचना करते थे।[49] किन्तु आज का युग परिवार नियोजन का युग है। संयुक्त परिवारों का स्थान छोटे परिवारों ने ले लिया है।

ऋग्वेद का ऋषि कहता है कि वही स्त्री श्रेष्ठ है जो ब्रह्मचर्य धारण कर वीर पुत्रों को जन्म देने वाली और सहनशील स्वभाव वाली है।[50] स्थिर स्वभाव वाली एवं ओजस्विनी नारियाँ वेद के युग की शोभा थी। उस काल में नारियों को यह आदेश भी था कि उनके ओष्ठ प्रान्त और कटि का निम्न भाग भी न दिख सके।[51] लेकिन आज घटते मूल्यों के स्तर के फलस्वरूप पाश्चात्य संस्कृति से प्रेरित आज की स्वच्छन्द चारिणी मल्लिका–शेरावत जैसी नारियाँ। लोपामुद्रा, गार्गी जैसी नारियों सेगौरवान्ति था वह वेद का युग, जहाँ नारी आदर्श बहन, आदर्शपत्नी व आदर्श माता थी। वैदिक युग का वह सुदृढ़ समाज ऐसे पारेवार की कल्पना करता था, जहाँ माता–पिता सन्तान के कल्याण की कामना करते थे वहाँ पुत्र भी अपने माता–पिता के कल्याण की कामना करता था।'[52]

मंगल-कामना- कठोपनिषद् का एक उदाहरण द्रष्टव्य है कि वाजश्रवस ऋषि का पुत्र नचिकेता जब देखता है कि उसके पिता दूध देने में असमर्थ बूढ़ी गायों को दान कर रहे हैं तब वह व्यथित होकर सोचता है कि ऐसे निकृष्ट दान से मेरे आप पिता कहीं यजुर्वेद के **अन्धेनतमसावृता।**'[53] के अनुसार निम्न गति को प्राप्त न हो जाएं, इसलिए वह बीच में ही अपने पिता से कहता है कि हे पिता ! मुझे आप किसे दोगे ? पिता वाजश्रवस क्रोधित होकर बोले कि तुझे यम को दूंगा। अपने पिता की आज्ञा का पालन करते हुए नचिकेता यमलोक चला गया। अपनी अनुपस्थिति में तीन दिन से भूखे–प्यासे नचिकेता को यम ने अतिथि मानकर तीन वरदान दिये। पहले वरदान में नचिकेता ने मांगा कि मेरे यहाँ आने से पिता दु:खी न हों तथा मेरे लौटने पर मुझे पहचानकर पहले की भाँति प्रेम से व्यवहार करें। यह थी एक पुत्र की पिता के प्रति मंगल कामना। लेकिन आज ऐसी मंगल–कामना दिखाई नहीं देती।

कठोपनिषद् में जीव ब्रह्म आत्मतत्त्व, जगत, सत् असत्, जन्म, मृत्यु, बन्धन, मोक्ष आदि से सम्बन्धित मूल्यों का विवेचन भी हुआ है। उपनिषद् का प्रमुख उद्देश्य प्राणी वर्ग को सत्कर्म में प्रवृत्त करना तथा सांसारिक भोगैश्वर्य के प्रति उदासीन बनाना है। कठोपनिषद् में उद्दालक का चरित्र अत्यन्त गौरवपूर्ण है। इसमें नचिकेता को आज्ञाकारी पुत्र के रूप में

चित्रित किया गया है। यम का स्वरूप भी अत्यन्त श्रद्धास्पद देव के रूप को अभिव्यक्त करता है। इन तीनों का ही चरित्र महनीय है।

नीति शास्त्र में धन की दान भोग एवं विनाश तीनों गतियों का उल्लेख है।[54] आज विश्व में धन के सम्पादन और संवर्धन की होड़ है। बुद्धिवादी वर्ग के लोग आज **विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परसुव।'**[55] को भुलाकर दूरितो अर्थात् बुराईयों का ही नित्य आविष्कार कर रहे हैं। कपड़ों का उत्पादन बढ़ रहा है पर रूझान नग्नता की ओर है। घोषणा विश्वशक्ति की की जा रही है, पर तैयारियाँ विश्वविध्वंस की हैं। आज असत् पृथ्वीलोक से उठकर धुलोक को छू रहा है। सत् के दर्शन तक दुर्लभ हैं।[56]

धर्म एव जयति नाधर्म के नारे लगा रहे हैं किन्तु असत्य और अधर्म दोनों ही मानवीय मूल्यो का क्षरण करते हुए विश्वव्यापी होकर विजय श्री प्राप्त कर रहे हैं। भारतीय कॉलेजों में लड़के-**लड़कियों को एक से परिधान, हिप्पियों जैसी केस सज्जा नाच, क्लब, व्यसन, विकास, धूम्रपान, मदिरापान सब पश्चिमीकरण की देन है। देश में हर वर्ष कई करोड़ों की सिगरेट की बिक्री होती है। मदिरा का बाजार भी करोड़ों की गिनती में आता है। सिर्फ तम्बाकू की वजह से हर वर्ष 50 लाख के लगभग मौत हो जाती है। सिगरेट और शराब दोनों मिलकर कैंसर को जन्म दे रहे हैं। आज भारत ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व ही व्यसनों और विलासों की रंगभूमि बन गया है।**

पर्यावरणीय मूल्य- भारतीय तप: पूत ऋषियों ने प्रकृति के प्राकृतिक तत्वों की जानकारी के लिए चिन्तन मनन एवं उपासना में समय व्यतीत किया। उन्होंने मानव के कल्याण के लिए पर्यावरण का गहन महत्त्व जानते हुए उसका संरक्षण किया। सुरक्षा, प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता, कष्टों के निवारणार्थ एवं रोगों के उपचार हेतु अनेक उपयोगी तत्वों का शोध किया तथा प्रकृत्ति के संवर्धन से शतायु होने की कामना की।

ऋग्वेद में तैंतीय देवताओं का वर्णन है- जो प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से पर्यावरण के सम्पूरक हैं। जीवों को सुरक्षित रखने वाले तत्त्वों को देवत्व की श्रेणी में प्रतिष्ठित किया गया है। यजुर्वेद का यह मन्त्र इन तत्त्वों में देवत्व का वर्णन करता है।[57] पर्यावरण की सुरक्षा के लिए वृक्षों एवं वनस्पत्तियों की सुरक्षा का सर्वाधिक महत्त्व हैं, क्योंकि प्राणवायु ऑक्सीजन हमें वृक्षों से ही मिलती है, इसलिए वनस्पत्तियोंऔषधियों वनों तथा वन रक्षकों तक को नमस्कार किया है।

नमो वृक्षेभ्यो।[58] नमो वन्याय।[59] वनानां पतये नम:।[60] औषधीनां पतये नम: ।[61]मधुमान्नो वनस्पत्ति:।[62]

वैदिक शान्तिपाठ तो पर्यावरण साधना का शाश्वत् उद्घोष है।

द्यौ: शान्ति अन्तरिक्ष शान्ति पृथिवी शान्तिराप शान्तिरोषधय: शान्ति: वनस्पतय: ।

शान्तिर्विश्वेदेवा: शान्तिर्ब्रह्म शान्ति: सर्व शान्ति: शान्तिरेव शान्ति: सा मा शान्तिरेधि।।[63]

इस प्रकार वैदिक साहित्य के महर्षियों को साहित्य सृजन का प्रमुख प्रयोजन मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा एवं लोक कल्याण ही रहा है।

निष्कर्षत: यही कहा जा सकता है कि मानव मूल्य एक ऐसी आचार संहिता या सद्गुण समूह है, जिसे मनुष्य अपने संस्कारों के द्वारा अपने परिवेश में माध्यम से अपनाता है। वह अपने निर्धारित उद्देश्यों के प्राप्ति के लिए अपनी जीवन प्रणाली का निर्माण करता है तथा अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। मूल्यों के विकास में मनुष्य की धारणाएं विचार, मनोवृति आस्था आदि सहयोग करते है। ये मानव मूल्य एक ओर व्यक्ति के अन्त: करण द्वारा नियन्त्रित होते है तो दूसरी ओर उसकी संस्कृति एंव परम्परा द्वारा परिपोषित होते है।

मानव जीवन के सुचारू रूप में परिचालित करने के उद्देश्य से विद्वानों ने जीवन के कुछ मापदण्डों का निर्धारण किया और उन्हीं के आधार पर मूल्य की अवधारणा अस्तित्व में आयी। इस दृष्टि से मूल्य का अर्थ मानव जीवन के सन्दर्भ में ही महत्त्व रखता है। जीवन के अभाव में मूल्य चिन्तन तो दूर की बात है मूल्य शब्द का अस्तित्व भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। अत: मूल्य शब्द का आशय मूलत: जीवन मूलय या मानव मूल्य अर्थात् जीवन के मापदण्ड से ही होता है।

जीवन मूल्यों का संदर्भ में भारतीय चिन्तन ने मानव जीवन की समस्त व्यवस्था को लक्ष्य मानकर जिन चार पुरूषार्थो अथवा मूल्यों की प्रतिष्ठा की है, उनमें अन्तवर्ती तथा बाध्य साध्यात्मक और साधनात्मक शाश्वत तथा सामयिक, वैयक्तिक तथा सामाजिक सभी तरक के मूल्यों की समाविष्टि हो जाती है, इसलिए आज भी वैज्ञानिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय आधुनिकता के संदर्भ में थोडे बहुत स्वरूप भेद के साथ समस्त नवीन जीवन मूल्यों की इन्हीं के अन्तर्गत देखा जा सकता है। इनकी वरीयता तो बदलती रही है, जैसे आज अर्थ ओर काम की प्रमुखता दिखाई देती है, किन्तु चारों में से किसी एक के भी पूर्वत: विलुप्तीकरण की स्थिति कभी नहीं आयी।

भारतीय संस्कृति के दृष्टिकोण के अनुसार प्राचीन धर्मशास्त्रों में मूल्यों की अपनी विशिष्ट सत्ता है। ईश्वर यहां चरम मूल्य होता है वही समस्त गौण मूल्यों की प्रेरणा होता है, वस्तुत: मूल्यों पर ही सम्पूर्ण धर्म का ढांचा टिका हुआ है। मूल्यों के अभाव में धर्म की सत्ता गौण ही जायेगी। मानव धर्म ही वह तत्व है जो किसी समुदाय विशेष को सुनिश्चित आदर्शों में बांध रखता है। सत्य, न्याय विवेक अहिंसा प्रेम, भक्ति आदि ईश्वर तक पहुंचने वाले ऐसे साधन है जिन्हें सभी धर्मों से समान रूप से अंगीकार किया गया है, ये ही धर्म शास्त्र के गौण मूल्य है। इन्हीं मूल्यों को आधुनिक दर्शनशास्त्री काध्ट एवं हीगेल ने सौन्दर्य कला आचार और धर्म आदि को सर्वोपरी मूल्यों के रूप में प्रतिष्ठापित किया है। इस प्रकार आधुनिक युग में बढ़ती हुई अन्तर्राष्ट्रीय जीवन व्यवस्था के परिणाम स्वरूप मूल्य चिन्तन के क्षेत्र में भारतीय और पाश्चात्य विचार धाराओं में आदान-प्रदान हो रहा है। यही कारण है कि भारत का पुरूषार्थ चतुष्टय का विचार पश्चिमी आधुनिकता के सन्दर्भ में पुर्नव्या ख्यायित किया जाने लगा है और पाश्चात्य चिन्तन तथा संस्कृति भारतीय आध्यात्मिकता और योग साधना मूलक जीवन दर्शन की ओर आकर्षित हो रही है।

सन्दर्भ

1. मनुस्मृति - 2.107
2. ऋग्वेद - 7.49.3
3. अहिंसा सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा: यमा। योग दर्शन 2.30
4. शौच सन्तोषतप: स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमा:। योग दर्शन 2.32
5. धृति, क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह: ।
   धीविधा सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।। मनुस्मृति 6.92
6. सप्त मर्यादा: काव्यस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यहुरो गात्।
   आयोह रकम्भ उपमरय नीऽ पथां विसर्गे धरूणेषु तस्थौ ।। ऋग्वेद 10.5.6
7. अथर्ववेद - 3.30.2
8. वही, 3.30.3
9. ऋग्वेद -10.85.6
10. ऋग्वेद -10.191.2
11. ऋग्वेद, 10.191.4

12. अथर्ववेद - 3.30.1
13. वही, 3.30.6
14. ऋग्वेद - 7.103.6
15. अथर्ववेद 12.1.45
16. वहीं, 3.24.3
17. ऋग्वेद -5.59.6
18. वहीं, 5.60.5
19. अथर्ववेद -- 19.41.1
20 मनुस्मृति - 7.2
21. ऋग्वेद - 6.16.31
22. वही, 1.412
23. अथर्ववेद 14.1.57
24 अवरूद्रमदीह्यव देवं त्रयम्बकम्।
...यथानो वस्य सस्करद्यथा न: श्रेयसस्करद यथा व्यवसाययात्।। यजुर्वेद 3.58
हत्सु क्रतुं वरुणो...अदधात् सोम मद्रौ। यजुर्वेद 4.31
भद्रोमेऽसि प्रच्यवस्व ...मा त्वा वृका अधायवो विदन....श्येनो भूत्वा परापत। यजुर्वेद 4.34
25.पूषन तव व्रते वयं न रिव्येम कदाचन। स्तोतारस्त इहस्मसि ।यजुर्वेद 34.41
26.विष्णो: कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्य: सखा। यजुर्वेद 6.4
27. तेन त्यक्तेन भुंजीथा:, असूर्या नाम ते.... अन्धेना तमसा। यजुर्वेद 40.1,3
28. ऋग्वेद-7.63.4
29. वही, 10.53.8
30. ऋग्वेद, 4.33.11
31. वही, 10.117.17
32. वही, 8.62.12
33.सामवेद-395
34. यजुर्वेद-40.1
35. पातंजल योग दर्शन: व्यास भाष्म 2.38
36. कल्याण: वेदकथाङ्क - 444
37.अथर्ववेद: 3.30
38. पातंजल योग दर्शन: व्यासभाष्य 2.32
39. यजुर्वेद - 40.1 ईशावास्योपनिषद ।
40.अथर्ववेद --16.30.16
41. शतहस्त समाहर, सहसहस्त संकिर। अथर्ववेद 3.34.5
42. कैवल्योपनिषद्

43. ऋग्वेद – 6.9.4
44. बृहदारण्यकउपनिषद 2.4.5
45.यजुर्वेद 40.6
46. अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेय तन्मे राध्यताम् इदमहमनृतात् सत्यतमुपैमि।। यजुर्वेद 1.5
47. सत्या नः सन्त्वाशिषः उपहूताः पृथिवी मातोप मां पृथिवी माता हव्यतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा।। यजुर्वेद 2.10
48. यजुर्वेद 19.77
49. स्तुतामया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्ताम् पावमानी द्विजानाम् आयु प्राणं प्रजा पशु कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् । अथर्ववेद 19.71.1
50. सा विट् सुवीरा मरूदिरस्तु। सनात्सहन्ती पुष्यन्ति नृम्णम् ।।ऋग्वेद 7.56.5
51. ऋग्वेद – 8.33.19
52. स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो अथर्ववेद 1.314
53. असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः। तारते प्रेत्यार्प्रेभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ।। यजुर्वेद 40.3
54.दानभोगोनास्तिस्त्रो गतयो भवन्ति वितस्य।
यो न ददाति न भुक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति।।नीतिशास्त्र 39
55. यजुर्वेद 30.3
56. असद् भूम्याः समभवत् तद्यामेतिमहद व्य चः। तद् वै ततो विधूपायत प्रत्यक कर्तारमृच्छतु।।अथर्ववेद –4.196
57.अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रूद्रा देवतादित्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पति देवतेन्द्रो देवता वरुणोदेवता।। यजुर्वेद – 14.20
58. यजुर्वेद–16.17
59.वही,16.34
60. वही16.18
61. वही16.19
62. ऋग्वेद–16.19
63. यजुर्वेद –36.17